वैदिक समाज में नारियों की स्थिति

डॉ. कविता कुमारी

वेद विश्व का प्राचीनतम वाड्मय है। मंत्रदृष्टा ऋषियों के द्वारा अनुभूत आध्यात्मिक तत्वों की विशाल राशि ही 'वेद' कही गई तथा उन तत्वों का अनुगमन करना वैदिक धर्म माना गया। अतः धर्म के मूल तत्वों को जानने का एकमात्र साधन वेद ही है। यह सर्वज्ञ स्वयं भगवान की लोकहिताय रचना है। "तैत्तिरीय संहिता" के अनुसार वेद का वेदत्व यही है कि वह प्रत्यक्ष या अनुमान द्वारा अबोध्य तत्वों का सुगमतापूर्वक बोध कराता है।

"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तृपायो न बुध्यते।

एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता" (तैत्तिरीय संहिता, भाष्योपोद्घात, पृ.–2)

किसी भी सभ्यता की आत्मा को समझने तथा उसकी उपलब्धियों एवं श्रेष्ठता का मूल्यांकन करने का आधार उसमें स्त्रियों की दशा का अध्ययन करना है। स्त्री–दशा किसी देश व काल की संस्कृति का मानदंड मानी जाती है। स्त्री अथवा नारी समाज की आधारशीला है। माता और भार्या के रूप में वह जिन कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का संवहन करती है, इन्हीं पर समाज का उत्कर्षापकर्ष अवलम्बित है। पुरुष के व्यक्तित्व का अंकुरण माता के ही अंक में होता है। वहीं उसके लिए प्राथमिक एवं सर्वप्रधान शिक्षालय का कार्य करती है। वहीं वह जिन विशेषताओं से प्रभावित होता है, वही कालान्तर में दृढीभूत होकर उसके चरित्र के अंग बन जाती है। यदि माता पुरुष के चरित्र की संपोषण भूमि है तो पत्नी उसके विकास हेतु प्रस्तर स्तम्भ पत्नी के रूप में स्त्री–पुरुष के सुख–दुख, आशा–निराशा, उत्थान पतन आदि द्वन्द्वों में चिर साहचर्य देती हुई, जीवन के सम–विषम पथ पर उसके साथ निरन्तर गति से चलती हुई प्रसाद अभिशापों की सहभागिनी बनी रहती है। स्त्री के इन युगलरूपों में ही उसका चिरन्तन महत्व अन्तर्निहित है। उसकी सामाजिक स्थिति से संपूर्ण समाज प्रभावित होता है। बहुधा ऐसा देखा गया है कि उसकी उन्नति अवनति का इतिहास समस्त समाज की उन्नति–अवनति का इतिहास बन जाता है। इस दृष्टि से स्त्री सामाजिक उत्कर्षापकर्ष का माप–दंड है। उसके सामाजिक मूल्य से सम्पूर्ण समाज का मूल्यांकन किया जा सकता है। यही कारण है कि स्त्री समाज का इतिहास अपना एक विशेष महत्व रखता है। भारतीय इतिहास में यह विषय स्त्री के विकास–हास, प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठा, संघर्ष – विघर्ष एवं उदय विलय की एक लम्बी कहानी है जिसमें हमारे सामाजिक इतिहास के विविध मधुर एवं कटु सत्य निहित है।

वैदिक समाज में नारियों की सम्मानजनक एवं उन्नत स्थिति का पता चलता है। इस काल में स्त्रियों को अत्यन्त आदरपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। वैदिक विद्या, बुद्धि, व्यवस्था आदि अनेक क्षेत्रों में और संस्कृति के उन्नयन में तत्कालीन नारियों का महत्वपूर्ण योगदान प्रतीत होता है। इस प्रकार की नारियों में अपाला, घोषा, शची, गोधा, अदिति, विश्ववारा, अत्रेयी, श्रद्धा, वैवश्वती, यमी और बाग्देवी का नाम उल्लेखनीय है। महाराज जनक की ब्रह्मवादिनी सभा में याज्ञवलक्य के समक्ष गंभीर तात्विक प्रश्नों को उपस्थित करनेवाली गार्गी का व्यक्तित्व भारतीय इतिहास के

• **पी.एच.डी. (संस्कृत),मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार.**

गौरव का प्रतीक है। इस प्रकार की विदुषी नारियों में मैत्रेयी का नाम भी उल्लेखनीय है, जिसकी विशाल ज्ञान–गरिमा का पता से 'वृहदारण्यकोपनिषद', चलता है। ये देवियाँ दिव्य शक्तियों की आगार थीं। वे ब्रह्मवादिनी होने के साथ–साथ सर्वगतिन, विश्वजन्या, मंत्रदृष्टय ऋषिकाएँ थीं। वैदिक समाज के निर्माण और उत्थान में उनका समान योगदान था। वैदिक साहित्य से लेकर लौकिक साहित्य तक सर्वत्र उनके महत्व तथा गौरव का गुनगान किया गया है।

वैदिक साहित्यों के अवलोकन से यह पता चलता है कि वैदिक समाज में पुत्री–जन्म इतना चिंताजनक नहीं था जितना की आधुनिक युग में माना जाता है। ऋग्वैदिक काल में पुत्र और पुत्री के सामाजिक एवं धार्मिक अधिकारों में बहुत अन्तर नहीं था। स्त्रियों के सामाजिक एवं धार्मिक अधिकार पुरुष के समान थे। पुत्र की भांति पुत्री भी उपनयन, शिक्षा–दीक्षा एवं यज्ञादि की अधिकारिणी थी। उस समय धार्मिक एवं याज्ञिक कार्य पुत्री द्वारा भी सम्पादित करवाये जाते थे। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह समान रूप से आदृत थी। शिक्षा, धर्म, व्यक्तित्व और सामाजिक विकास में उसका महान योगदान था। नववधु गृह की सम्राज्ञी होती थी। वह पति के साथ प्रत्येक कार्य में सहयोग प्रदान करती थी तथा याज्ञिक कार्य सम्पन्न करती थी। स्त्री–पुरुष दोनों यज्ञ रूपी रथ के जुड़े हुए दो बैल थे। बिना पत्नी के गृह की कल्पना व्यर्थ मानी जाती थी। स्त्री को ही घर कहा गया है। 'जायेदस्तम्' (ऋग्वेद 3/53/4)। विवाह के पश्चात् से पतिगृह में गृहपत्नी, गृहस्वामिनी का अधिकार प्राप्त होता है।

पूषां त्वेतो नयतु हस्तगृहयाश्विना त्वा प्र वहतां रथेन।

गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा बदासि (ऋग्वेद 10/85/26)।।

एक ओर उसे पति, सास–ससुर की सेवा शुश्रुषा तथा उसकी देखरेख का उत्तरदायित्व दिया जाता है, तो दूसरी ओर उसे गृहस्वामिनी के रूप में सास–ससुर नन्द आदि की साम्राज्ञी कहा गया है।

सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्रवां भव।

ननान्दरि सम्राज्ञीभव, सम्राज्ञी अधि देवृषु (ऋग्वेद 10/85/46)।।

वेदों में नारी को बहुत आदरणीय स्थान दिया गया है। वह पुरुष की सहधर्मिनी होती है। उसे अर्धांगिनी कहते हैं।

"अधों ह वा एष आत्मनो यज्जाया (शतपथ ब्राह्मण 5/02/1/10)।"

वह पति की अनुव्रता होती थी अर्थात् उत्तम मन, उत्तम संतान और उत्तम भाग के साथ पति के अनुकूल श्रम कार्यों में उनकी सहभागिनी बनकर मोक्ष देने वाली भी थी। गृहस्थ जीवन में रहकर उसका धर्म था परिवार को सभी प्रकार से सुखी रखना और उसका कल्याण करना। पतिव्रता धर्म नारी का एक मात्र तप था, जिसके बल पर उसमें सूर्य को उदय होने से भी रोक लिया था। अगस्त्य पत्नी माता लोपामुद्रा के संयम, मर्यादा, तप, त्याग और पतिवृत्य धर्म की बड़ी प्रशंसा की गयी है। उनके चरित्र को बड़े ही पूजा भाव से स्मरण किया गया है। श्स्कन्दपुराणश एक कथा में उनके पुण्यशील चरित्र की बड़ी प्रशस्ति गाई गयी है। ऋग्वैदिक नारियों के मुख्य कर्त्तव्य थे– मधुर भाषण,

सत्यवादिता और दूसरों को भी वैसा करने के लिए प्रेरित करना, अपने पति तथा अन्य लोगों को उत्तम सलाह देना तथा यज्ञ आदि का अनुष्ठान करना। ऋग्वेद में स्त्री का गौरव बताते हुए उसे श्ब्रह्माश कहा गया है।

"स्त्री ही ब्रह्मा वभूविथ।" (ऋग्वेद 8/33/19)।

इसका अभिप्राय यह है कि वह ज्ञान में उत्कृष्ट होती है। वह बालकों के शिक्षण के अतिरिक्त यज्ञ में भी ब्रह्मा का स्थान ग्रहण कर सकती है और विभिन्न संस्कार करा सकती है। वेदों में इन्द्राणी को आदर्श नारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उनका कथन है कि मैं समाज में मुर्धन्य हूँ। मैं अग्रगण्य हूँ और मै प्रखर वक्ता हूँ।

अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचंनी (ऋग्वेद 10/159/2)।

इन्द्राणी का ही कथन है कि कोई मुझे अबला न समझे। मैं सबला हूँ और वीर पुत्रों की जननी हूँ।

अवीरामिव मामयं शरारूरभि मन्यते।

उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरूत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तर (अथर्ववेद 20/126/9)

वैदिक युग की दिव्य गुणों से युक्त नारी को पुरुषवर्ग सरस्वती के समान पूजता था। प्रत्येक शुभ कार्य में विदुषी नारियों को आमंत्रित किया जाता था। वैदिक युग की नारी पुरुष को प्रेरणा देने वाली (चोद्यित्री) विदूषी (सरस्वती) और उत्तम ज्ञान देने वाली थी। वह विद्वानों की माता थी और शुभ कार्यों में उपदेश देने वाली ब्रह्मज्ञानी थी। वह ऐसा युग था जिसमें प्रतिभा के विकास की पूरी स्वतंत्रता थी। सामाजिक संकीर्णता और दुराग्रह नहीं था। पुरुषों के समान ही नारियों का भी स्थान था। यज्ञों, उत्सवों, क्रीड़ा – कौतुकों और प्रतियोगिताओं में भाग लेने का दोनों को समान अधिकार प्राप्त था। ऐसा कोई भी सार्वजनिक, धार्मिक तथा सामूहिक कार्य नहीं था, जिसमें नारियाँ भाग न लेती हो।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में नारियों के शौर्य की चर्चा करते हुए इन्द्राणी को सेना की देवता कहा गया है। साथ ही यह भी कहा गया है कि ऐसा करने से सेना के शौर्य में निखार आता है।

इन्द्राणी वै सेनायैदेवता, सेवास्यसेनां संश्यति (तैत्तिरीय संहिता 2/2/8/21)

इन्द्राणी को सेनानी बताते हुए कहा गया है कि वह अज्ञेय है।

इन्द्राण्ये तु प्रथमाजीतामुषिता पुरः (अथर्ववेद 1/27/4)।

इन्द्राणी के लिए कहा गया है कि वह शत्रुसेना को काटती हुई आगे बढ़ती है।

विषूच्येतु कृन्तती पिनाकमिव विभ्रती (अथर्ववेद 1/27/2)।

ऋग्वेद में स्त्री सेना का भी उल्लेख है कि और असूरों ने भी स्त्री सेना को आगे किया।

स्त्रियों हि दास आयुधानि चक्रे (ऋग्वेद 5/30/9)।

ऋग्वेद में यह वर्णित है कि शत्रुओं से युद्ध के दौरान विश्पला के कटे पैर की जगह लोहे के पैर अश्विनी कुमारों द्वारा लगाये जाने पर वह युद्ध में भाग ले सकी।

सद्यो जङ्. घामायसी विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधन्तम् (ऋग्वेद 1/116/15)।

इसी प्रकार मृद्गलानी के लिए कहा गया है कि उसने असूरों से युद्ध करके गायें छुड़ा लीं।

थीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरकृतं व्यचेदिन्द्रसेना (ऋग्वेद 10/102/2)।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में वीर नारियों की कमी नहीं थी और वे युद्ध भूमि में जाया करती थी।

अर्थववेद में वर्णित है कि स्त्री पति के साथ सामूहिक यज्ञों और युद्धों में जाती थीं।

संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वावगच्छति (अथर्ववेद 20/126/10)।

मंत्र में प्रयुक्त 'समन' शब्द के दो अर्थ है सभा या समारोह और युद्ध दोनों ही अर्थ यही न्यायसंगत है। ऋग्वेद और यर्जुवेद, में स्त्री के लिए ये विशेषण दिये गये है जिनसे उनके शौर्य एवं गौरव पर प्रकाश पड़ता है। इसमें नारी को अषाढ़ा (अजेय), सहमाना (विजयनी) सहस्त्रवीर्या (असंख्य पराक्रम वाली), सपत्नघ्नी (शत्रुनाशक), जयन्ती (विजेता) इत्यादि कहा गया है।

असपत्ना सपत्नध्नी जयन्तयभिभूवरी (ऋग्वेद 10/159/5)1

अषादाऽसि सहमाना सहस्वारातीं, सहस्व पूतनायतः।

सहस्त्रवीर्याऽसि सा मा जिन्व (यजुर्वेद 13/26)।

इस प्रकार वैदिक युग के समाज में नारियों की अवस्था अत्यन्त उन्नत एवं परिष्कृत थी। वह पुरुषों के समान ही विभिन्न पदों की अधिकारिणी थी। उसकी वरिष्ठता किसी भी बिन्दु पर पुरुषों से कम नहीं थी।

संदर्भ :

- अथर्ववेद 1/27/2, 1/27/4, 20/126/9, 20/126/10.
- तैत्तिरीय संहिता 2/2/8/21.
- यजुर्वेद– 13/26.
- ऋग्वेद– 1/116/15, 3/53/4, 5/30/9, 8/33/19, 10/85/26, 10/85/46, 10/102/2, 10/159/2, 10/159/5.
- शतपथ ब्राह्मण– 5/02/1/10.